समागम

मृदुला गर्ग

समागम

कहानी

मृदुला गर्ग

मैं उस रोमांचक क्षण का इन्तज़ार कर रही थी, जो कुछ देर में मुझे अभिभूत करने वाला था। अपने-अपने अनुभव से सभी ने कहा था, अभूतपूर्व होती है, वह अनुभूति। हमेशा के लिए स्मृति में अंकित हो जाती है।

अनुभव से कहा या अनुमान से, कौन जानता है ? ख़ुद कहने वाला भी नहीं। शाम साढ़े सात बजे गंगा की आरती होनी थी। अभी कुल छह बजे थे। पर हर की पैड़ी पर तिल रखने की जगह नहीं थी। सीढ़ी दर सीढ़ी एक अपार भीड़ जंगली घास की तरह एक के ऊपर एक लदी हुई थी। कहीं दरार या छीड़ नहीं थी। फिर भी लोग आते जा रहे थे और भीड़ के बीच समाते जा रहे थे। मैं भी समायी थी, इसी तरह, कुछ देर पहले। सच तो यह है कि अगर नवागन्तुकों का एक रेला मुझे ठेल कर अपने साथ आगे बहा न लाया होता तो मैं सरहद से ही लौट जाती। मुझे भीड़ से बहुत घबराहट होती है।

नहीं, डर नहीं लगता, कम से कम वह डर नहीं सताता, जिससे प्रभावित हो कर चारों तरफ़ से लाउड-स्पीकरों पर हिदायतें दी जा रही थीं। कृपया यात्री ध्यान दें। अपना सामान साथ रखें। जेबकतरों और उठाईगीरों से सावधान रहें। औरतें अपने ज़ेवर की देखभाल ख़ुद करें।

बेसुरे भजन गायन के बीच में किये जा रहे सावधान के ऐलान जिस डर को शब्द दे रहे थे, वह मेरे भीतर कहीं नहीं था। ज़ेवर मैं पहनती नहीं। रुपया-पैसा, थोड़ा-बहुत जो है, गंगा तट ले कर आयी नहीं। पास में धन्नासेठ बैठा हो या उठाइगीर, मेरे लिए दोनों एक तरह की हौल को जन्म देने वाले थे। शोर बढ़ रहा था।

संध्या के जोबन पर आने के साथ, भीड़ ने गंगा मैया की जो भी बोलनी शुरू कर दी थी। उसके अलावा, हाथों में बही थामे वर्दीधारी स्वयंसेवक, उचक-उचक कर, ऊँची आवाज़ में यात्रियों से आरती के लिए अनुदान माँग रहे थे, हाँ जी आप, गंगा मैया की आरती के लिए पैसा बोलिए।

गंगा मैया की जै क्र-क्री, क्र-क्री

गंगा मैया-क्री-क्री

तोहे पियरी-क्र-क्र-

चढ़ायी-क्री-बो-क्र-क्री।

सामान सँभाल कर रखें।

गंगा मैया की आरती के लिए कितना रुपया, बोलिए।

जेबकतरों और उठाईगीरों से सावधान।

क्री-क्री-जय गंगा मैया की।

क्री-क्री-क्री-क्री।

पता नहीं माइक की ख़राबी थी या रिकार्ड की, पर भजन के सुर क्री-क्री से चिर कर हवा में खो जाते थे। हाँ, ऊँचे स्वर में दी जा रही सावधान रहने की हिदायतें, फटे बाँस-सी कर्णकटु होने पर भी, अपने शब्द यात्रियों तक सुरक्षित पहुँचा देती थीं।

जब पहले-पहल यात्रियों के झुण्ड ने धकिया कर मुझे यहाँ ला बिठलाया था तो मैं देर तक नज़रें नीची किये रही थी। कम से कम जगह में समाने के लिए मैं घुटनों को हाथों से घेरे बैठी थी। मेरे चारों तरफ़ ठठ की ठठ भीड़ थी इसका मुझे एहसास था। फिर भी उसे अनदेखा किये रहने की कोशिश में मैंने यों दम साध रखा था कि ख़ुशनुमा ठण्डी हवा के बावजूद मुझे पसीना आ गया था। पेट में हौल के गोले उठ रहे थे, जिन्हें वापस दबाये रखने के लिए मैं खुल कर साँस लेने से कतरा रही थी। पर बार-बार होते दुनियादार ऐलान उन हौल के गोलों में सुई चुभोने लगे थे।

इतनी दीन-हीन, जेबकतरों और उठाईगीरों से डरी हुई भीड़ ! इससे भला कैसी घबराहट ? यह मेरा वजूद क्या ख़त्म करेगी ? मैंने सिर उठा कर देखा, दूर तक सिर ही सिर, धड़ ही धड़, शान्त-स्थिर। कोई हलचल नहीं धकापेल नहीं। नये आगन्तुकों का रेला आता, जनसर में हिलोर उठती पर शीघ्र ही समागम हो जाता। फिर वही शान्त-स्थिर समूह। जैसे घाट की सीढ़ियों पर मोम के पुतले स्थापित कर दिये गये हों, ठूसम-ठूस। गहन सन्नाटे के बीच रह-रह कर उठता गंगा मैया की जै का उद्घोष भी उसे तोड़ नहीं पाता था। ध्वनि ऊपर उठती और हवा उसे सोख लेती। जैसे पसीना। हाँ, मेरे बदन का पसीना भी सूख चला था। इतने पास-पास सटे शरीरों के बावजूद किसी देह गंध का एहसास नहीं था।

मैंने अपने चेहरे से सटे चेहरों पर निगाह घुमायी। एकदम भावहीन। कोई आशंका, आशा, आकांक्षा नहीं। लगता नहीं था उन्हें किसी क्षण की प्रतीक्षा थी। अधैर्य न सही, सधा हुआ धैर्य तो दिखना चाहिए था ? नहीं था